P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-5* (Part-1) August- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

दलित संघर्ष और मुक्ति

सारांश

शिवमूर्ति समकालीन हिन्दी कथा–साहित्य के समर्थ और चर्चित कथाकार है। इनकी सृजनात्मक प्रतिभा की केंद्रीय विधा उपन्यास और कहानियाँ रही है। हिन्दी कथा–साहित्य के क्षेत्र में इनका अवदान कम नहीं है पर आलोचकों की दृष्टी शिवमूर्ति के कथा–साहित्य की ओर कम है । हिन्दी कथा साहित्य में शिवमूर्ति का आगमन अपनी निजी विशेषताओं ,परम्पराओ, युगीन परिस्थितियों और आधुनिक चेतना के साथ हुआ है। तर्पण, त्रिशूल और आखिरी छलांग नामक उपन्यास तथा केशर कस्तूरी में संकलित कहानियाँ उनकी जागरूकता और युग–चिंतन के यथार्थ चित्रण का प्रमाण है।

मुख्य शब्द : दलित चेतना, स्वाभिमान, अस्तित्व।

प्रमोद कुमार प्रसाद
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
जे.के. कॉलेज,
पुरुलिया, पश्चिम बंगाल

प्रस्तावना

तर्पण उपन्यास का कथासूत्र मूलतः दो परिवारों के माध्यम से घिरते वर्ग संघर्ष से बुना गया हैं। एक ओर दलित पियारे का परिवार है तो दूसरी और ब्राह्मण धरमू का । पियारे की बिटिया रजपती मजदूरी से मिले धान को अपनी खोंछे में बांधे तथा कंधे पर दो गन्ने चली आ रही है। किंतु धरमू के गन्ने को देखकर उसके मन में ललक बढ़ती है । पर दिन के उजाले में चोरी कैसे करें । उधर धरमू का बेटा चंदर रजपती का देह पाने के लिए पहले से ही मटर के खेत में घात लगाए बैठा है। जैसे ही रजपती मटर के खेत में झुककर साग खोंटती है, अवसर का लाभ उठा कर चंदर उसपर टूट पड़ता है। किंतु रजपती द्वारा दृढ़तापूर्वक विरोध और परेमा की मां तथा मिस्त्री बहू के आ जाने के कारण वह अपने लक्ष्य में सफल नहीं हो पाता है। यही घटना अपने विस्तार में उपन्यास का कथानक बन जाता है।

अध्यनन का उद्देश्य

तर्पण दलित अस्मिता पर केंद्रित शिव मूर्ति का यथार्थवादी उपन्यास है। इसकी कथा वस्तु शिवमूर्ति की पूर्ववर्ती रचनाओं के यथार्थ और चेतना के भिन्न अस्तर पर चिंतन के लिए पाठकों को उकसाता है। प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार ने विभिन्न कथा– प्रसंगो के माध्यम से शताब्दियों से शोषित, पीड़ित दलित समुदाय के भारतीय लोकतंत्र में क्या स्थिति है, उनकी स्थिति में समय के बदलाव के साथ क्या और कैसे परिवर्तन हो रहे हैं । दलित समुदाय अपने दुःख ,अभाव, शोषण और अत्याचार आदि का कैसे प्रतिकार–प्रतिरोध कर रहा है, यही कथा का मूल आधार व इस आलेख का मुख्य उद्देश्य है । अस्सी के दशक में राजनीति के पटल पर जो बदलाव लक्षित होते हैं उस पर बदलाव का सहारा लेकर हमारे समय के गांव में आ रहे बदलाव और उस बदलाव के पूर्ववर्ती समय से अलग करते हुए वर्तमान समय– संदर्भ में गांवों की सही पड़ताल करने की कोशिश करते हैं।

शिवमूर्ति जी इस घटना के माध्यम से, इसमें इन्वॉल्व दोनों चरित्रों के माध्यम से जहाँ एक ओर उस अंतर्विरोधों को सामने लाते हैं जिससे दोनों ही पक्ष एक–दूसरे की कमजोरियों और उनके उठाए जाने वाले फायदों से परीचित हैं, वहीं दूसरी ओर हमारी व्यवस्था का कच्चा चिट्ठा खोलना नहीं भूलते , जिस व्यवस्था के कारण इस देश में आर्थिक और सामाजिक विषमता बनी हुई, जो इस तरह के अपराधों और अमानवीय कृत्यों को जन्म देती है। जिसके कारण रजपती जैसी अनेक बेटियों को हवस का शिकार बनना पड़ता है ।उपन्यासकार ने विक्रम के माध्यम भारतीय लोकतंत्र में आर्थिक विषमता का बड़ा यथार्थचित्र उपस्थित करता है जहां कुछ लोग खाते –खाते मरते हैं और कुछ बिना खाए ही मरता है। विक्रम नए लड़कों से कहता है– ''सारें खेतों पर उन्हीं लोगों का कब्जा क्यों ? हमारे हिस्से के खेत कहां गए ? मुर्दा गाड़ने भर की जगह भी हमारे हिस्से में नहीं छोड़ा इन लोगों ने मजदूरी से अनाज मिल जाएगा लेकिन साग–पात ,गन्ना, गंजी ,मटर ,चनों का स्वाद हमें कैसे मिलेगा ? क्या इनका स्वाद लिए बिना ही हमारी जिंदगी बीत जाएगी?''[1] शिवमूर्ति जी यहां यह बताना

चाहते हैं हमारी व्यवस्था एक है एक सोची समझी साजिश ही है, जहां मानवीय मूल्यों के लिए कोई जगह नहीं है।बस यहां स्वार्थ ही प्रमुख है।

'तर्पण' के कथानक के प्रसंग में चर्चा करते हुए हमें यह याद रखना होगा कि 'तर्पण' की कथावस्तु अस्सी के दशक की कथावस्तु है ।यह दशक दलितों के संघर्ष की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण दशक था । इसी दशक में बामसेफ और बी. एस. फोर जैसे संगठनों की सक्रियता के कारण उत्तर भारत के दलित समुदाय में अभूतपूर्व सक्रियता और जागृती आयी थी। इन संगठनों ने, जिसे हिंदी– पट्टी कहा जाता है, उसके राजनीतिक इतिहास का चेहरा ही बदल डाला था। बदलती परिस्थिति में दलितों के बीच सामूहिकता बनती है, नेतृत्व उभरता है, कानून–कायदे की जानकारी होती है तो जन्म–जन्मांतर से छिपा क्रोध फूट पड़ता है । इस तरह हमेशा से पराजित दलित निर्णायक जंग के लिए तत्पर हो उठता है इसे कथाकार ने पियारे और धरमू के आपसी संघर्ष के माध्यम से दिखलाया है। पियारे और धरमू की लड़ाई अब सच और झूठ की लड़ाई तक ही सीमित नहीं रह जाती है। यह लड़ाई सच और झूठ की लड़ाई के बजाय न्याय–अन्याय ,शोषक– शोषित और दलित सवर्ण के बीच की लड़ाई बन जाती है। दलित और सवर्ण दो ध्रुव हो जाते हैं । दो तरह की राजनीतिक धाराएं बन जाती है । दलितों का नेतृत्व भाई जी करते हैं जो दलित पार्टी के कार्यकर्ता हैं और सवर्णों का नेतृत्व स्वयं धरमू का नेतृत्व और उसका परिवार करता है । दोनों ओर राजनीतिक कूटनीतिक जंग रची जाती है । दलित आपस में चंदा करते हैं । सवर्णों के पास पैसे की कमी नहीं है। सवर्ण दलितों को सबक सिखाने के लिए एक जुट होकर पुलिस अधिकारीयों तथा न्यायधीश के रिश्तेदारों की खोज करते हैं, घूस देते हैं, सिफारिश करवाते हैं । दलित 'हरिजन ऐक्ट' के प्रावधानों की दलील देते हैं और दलित अधिकारियों, नेताओं का सहयोग लेते हैं।

समय के इस बदलाव के साक्ष्य का पहला संकेत उस समय देखने को मिलता है जब पियारे की अनुपस्थिति में ही सब एकमत होते हैं । अपनी जीत को मजबूत करने के स्टेटजी बनाने हैं। भाई जी कहते हैं – ''पीठ दिखाना अच्छी बात नहीं । रिपोर्ट लिखना होगा। संघर्ष करना होगा .....और सिर्फ संघर्ष ही काफी नहीं जीत भी पक्की होनी चाहिए ।' स्ट्रेटजी ' बनाना होगा। "[2]

निश्चय ही यह राजनीतिक बदलाव का ही असर है जिसके फलस्वरुप प्यारे हमले का जुर्म सहर्ष अपने ऊपर ले लेता है। वकीलों के समझाने पर भी वह सुनता और कहता है "नहीं वकील साहब। मुझे जेल जाना है। जेल की रोटी खाकर प्रायश्चित करना है। इस पाप का प्रायश्चित कि कान–पूंछ दवाकर इतने दिनों तक उन लोगों का जोर–जुल्म सहता रह गया ।"[3] यह सामंतो की शक्ति के विरुद्ध नई उदीयमान शक्ति का संचय हैं। शिवमूर्ति जी ने जहाँ दलित एकजुटता को दिखलाए है वहीं उनके अंदर ही अंदर अन्तर्द्वन्द और फूट को भी दिखलाना नहीं भूलते। दलित स्त्रीयों से चंद्रर का पकड़ा जाना तो अच्छा लगता है पर थाना पुलिस करना अच्छा नहीं लगता। "टोले की बहुतेरी औरतों को इस तरह थाना–पुलिस करना अच्छा नहीं लगता। ठाकुरों वामनों से रार करके भला कितने दिन रह सकता है कोई गाँव में ? बिना चोरी–चकरी किए भला गुजारा हो सकता है , जब अपने पास एक घूर खत नहीं तो..... ।"[4]

बदलती परिस्थितियों में दलित सवर्णों के दंभ को चूर करने के लिए जहाँ एक ओर स्ट्रेटजी बनाते नजर आते हैं वहीं दूसरी ओर हताश मनोदशा में भी सवर्ण अपने जाति–दर्प को बानाए रखना चाहते हैं। धरमू पंडित कहता है "परिवार में कम से कम एक लड़के का नंगा निकलना बहुत जरूरी है , जिनके नाम से सारा गाँव थर–थर कंपता रहे। शूद्रों , चमारों का राज आ गया , इसलिए पहले जैसा दबदबा तो कब क्या रहेगा लेकिन पैलगी आशीष तक बंद कर दिया सालों ने। बिना कोई तवज्जों दिए मुँह उठाए सामने से चले जाते हैं।" [5]

शिवमूर्ति ने इस उपन्यास में न केवल दलित–सवर्ण के संघर्ष को ही वर्णित किया है बल्कि इसी के बहाने पुलिस,जेल,कचहरी का पोल खोल है। थाना–पुलिस ,कोर्ट–कचहरी के यथार्थ को व्यंजित करते हुए दलपत बाबा कहता है "थाना–पुलिस और कोट–कचेहरी में दौड़ना अपना ही खून पीने जैसा है। दौड़ते–दौड़ते सिर के बाल झड़ जाते हैं। ..... इसमें कुछ हाथ नहीं लगने वाला । वकील ,मुंशी ,पेशकर तो..... । चिड़िया से ज्यादा गरीब कौन होगा । लेकिन बहेलिया उसी का शिकार करते हैं। अंडे–बच्चे मां के इंतजार में घोसलों में चीखते–चीखते मर जाते हैं , लेकिन चिड़िया तो गई बहे लिए के पेट में। हमलोग भी कोट–कचहरी जाने के लिए निकलते हैं तो समझो बहेलिए के पेट में ही जाने के लिए निकलते हैं। " [6]

निष्कर्ष

यह कहा जा सकता है कि 'तर्पण' सामंती शक्ति के विरुद्ध का दस्तावेज है। इसमें एक ओर हजार–हजार वर्षों के दुखः , आभाव और अत्याचार का नग्न यथार्थ है तो दूसरी और दलितों के स्वप्न , संघर्ष और मुक्ति की नई वास्तविकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *शिवमूर्ति, तर्पण, पृ–25, राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली , 2005*
2. *वही , पृ– 25*
3. *वही , पृष्ठ– 116*
4. *वही , पृष्ठ– 44*
5. *वही , पृष्ठ– 14*
6. *वही , पृष्ठ– 17–18*